M.A. Public Administration – Semester II

Paper: Personnel Administration

Teacher : Dr. Megha Pandey

कार्मिक व्यवस्था

कार्मिक व्यवस्था (Personnel System) कार्मिक प्रशासन (Personnel Administration) का कार्य–क्षेत्र है। कार्मिक प्रशासन से आशय किसी भी संगठन में कार्यरत् कर्मचारियों, अधिकारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा अन्य सेवा शर्तों की प्रक्रियाओं को निष्पादित करने वाले तन्त्र से है जो सरकारी एवं निजी दोनों प्रकार के संगठनों में पाया जाता है। कार्मिक प्रशासन को 'कार्मिक प्रबंधन; सेवी वर्ग प्रबंध; श्रम प्रबंधन; 'औद्योगिक संबंध' या 'मानव संसाधन प्रबंध' भी कहा जाता है। लोक प्रशासन के क्षेत्र में कार्मिक प्रशासन वह शाखा है, जो संगठन के उद्देश्यों, लक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्षम, योग्य कर्मचारियों के भर्ती से लेकर सेवानिवृत्ति के बाद तक के सम्पूर्ण विषयों से संबंधित हैं। इसी के अन्तर्गत कार्मिक व्यवस्था हेतु पूर्ण विचारित नीतियों, नियमों, परम्पराओं और विवेकपूर्ण तकनीकों का प्रयोग कार्मिकों के चयन, विकास और प्रतिधारण में किया जाता है ताकि व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके।

कार्मिक व्यवस्था प्रशासनिक रुप से व्यवस्थित, वैज्ञानिक एवं तार्किक रूप से उन सिद्धान्तों और तकनीकों का प्रयोग करना है जिससे –

- कार्यरत् कर्मचारियों, अधिकारियों की समर्थताओं का विकास किया जा सके।
- वे अपने कार्य से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सकें।
- वे अपनी कार्य–कुशलता से संगठन के लक्ष्यों को पूरा करने में योगदान दे सकें।
- संगठन में अच्छे, कार्य–अनुकूल मानवीय संबंध निर्मित एवं बनाए रखे जा सकें।

कार्मिक प्रशासन का कार्य–क्षेत्र अपने पारम्परिक स्वरूप से बहुत आगे बढ़ गया है और जैसे–जैसे प्रशासन के सम्मुख कार्य–जटिलताएँ बढ़ती जा रहीं हैं, वैसे–वैसे कार्मिक व्यवस्थापन या प्रबंधन के

कार्यात्मक एवं व्यवहारात्मक पहलू का महत्व भी बढ़ता जा रहा है। नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ परसोनल मैनेजमेन्ट, कार्मिक प्रबंधन के तीन पहलूओं का उल्लेख करता है –

1. **कल्याणकारी पहलू** – यह कार्यस्थल की परिस्थितियों और सुविधाओं से संबंधित है जैसे – आवास, कैण्टीन, स्कूल, मनोरंजन, शिशुगृह आदि।
2. **श्रम अथवा कार्मिक पहलू** – यह भर्ती, पदस्थापना, स्थानान्तरण, पदोन्नति, पारिश्रमिक, प्रोत्साहन, उत्पादकता आदि से संबंधित है।
3. **औद्योगिक संबंध पहलू** – यह श्रमिक संगठनों, कर्मचारी/अधिकारी संघों, संगठनात्मक विवादों के निराकरण, औपचारिक बैठकों, समझौतों आदि से संबंधित है।

डेल याडर ने कार्मिक व्यवस्थापन से सम्बन्धित निम्नलिखित सात कार्य वर्णित किए हैं –

1. संगठनात्मक संबंधों के लिए सामान्य तथा विशिष्ट प्रबंधन नीति स्थापित करना तथा नेतृत्व और सहयोग के लिए एक उपयुक्त संगठन स्थापित करना और उसे जारी रखना।
2. द्विपक्षीय समझौते, अनुबन्ध, बातचीत, अनुबन्ध प्रशासन तथा शिकायत व्यवस्था करना।
3. संगठन में भर्ती करना, निश्चित प्रकार और संस्था के कर्मचारियों की तलाश करना, उनको प्राप्त करना तथा संगठन में बनाए रखना।
4. सभी स्तरों पर कर्मचारियों के स्व–विकास में सहायता देना, कार्मिक विकास तथा उन्नति के साथ–साथ उचित कौशल और अनुभव प्राप्त करने के लिए अवसर प्रदान करना।
5. प्रोत्साहन देकर कर्मचारियों में प्रेरणा विकसित करना और उसे बनाये रखना।
6. संगठन में मानव शक्ति प्रबंध का पुनरावलोकन और लेखा परीक्षण करना।
7. औद्योगिक संबंध अनुसंधान, जो ऐसे अध्ययन करे जिनसे कर्मचारियों के व्यवहार का स्पष्टीकरण हो और उसके द्वारा मानव शक्ति प्रबंधन में सुधार किया जा सके, को प्रोत्साहित करना।

उपरोक्त कार्यों के निष्पादन हेतु संगठन में कार्मिक एजेन्सी की स्थापना आवश्यक होती है। वह केन्द्रीयकृत रूप से निम्नलिखित कार्यों के लिए जिम्मेदार होती है –

– कार्मिक नीति का निर्माण करना।

– वर्तमान तथा भावी मानव शक्ति का अनुमान लगाना।

– अनुसंधान करना या करवाना।

– अभिलेखन बनाना एवं रखना।

– कर्मचारियों को काम पर लगाना, उनका कार्य संबंधी विकास करना।

– सभी स्तरों पर प्रभावकारी बातचीत की संभावनाएँ विकसित करना।

– भौतिक तथा वित्तीय कार्य वातारण की सुविधाएँ प्रदान करना।

– योग्यता मूल्यांकन व्यवस्था तैयार करना।

– मानव संसाधन का लेखाकरण तथा लेखा परीक्षण आदि।

उपरोक्त आधारों पर कार्मिक व्यवस्था –

1. अच्छे मानव संबंधों को प्राप्त करने से संबंधित है अतः मानव–संबंधी विचारधारा/व्यवहारवादी विचारधारा के निकट है।
2. इसमें मनोवैज्ञानिक पक्ष को अधिक महत्व दिया जाता है।
3. यह मनोवैज्ञानिक, मानवीय तथ्यों के साथ–साथ वैज्ञानिक, तार्किक तथा व्यावसायिक सिद्धांतों को संतुलित करने से सम्बन्धित है।
4. यह परामर्शदात्री या सलाहकारी कार्य भी है।
5. यह अनुसंधान तथा शोध परक कार्य भी है।
6. यह तुलनात्मक अध्ययन से संबंधित है।
7. यह मूल्यांकन तथा लेखा परीक्षण की प्रवृत्ति रखता है। आदि।

आधुनिक वर्षो में अधिकतर संगठनों की कार्मिक नीतियों तथा क्रियाओं में बहुत प्रसार एवं विविधीकरण हुआ है। अतः यह आवश्यक हो गया है कि कार्मिक प्रशासन हेतु एक अलग विशिष्ट विभाग निर्मित किया जाए। भारत में केन्द्रीय तथा राज्य दोनों प्रशासनिक स्तरों पर यह समुचित व्यवस्था की गई है।

लोक सेवकों की भर्ती

कार्मिक प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष भर्ती है। किसी भी संगठन की कार्यकुशलता तथा प्रतिष्ठा उसमें कार्यरत् कर्मचारियों के कौशल, योग्यता, मनोबल तथा उनकी कार्य प्रतिबद्धता पर निर्भर करती हैं। लोकतांत्रिक कल्याणकारी राज्य में सरकार के दायित्वों की पूर्ति लोक सेवकों के माध्यम से ही

होती है अतः योग्यता आधारित, निष्पक्ष तथा व्यावहारिक भर्ती प्रणाली की आवश्यकता स्वयं सिद्ध है। सामान्य अर्थ में, **'भर्ती'** शब्द को नियुक्ति का सामानार्थक माना जाता है, परन्तु, प्रशासन की तकनीकी शब्दावली में भर्ती का अर्थ किसी पद के लिए उचित एवं उपयुक्त प्रकार के उम्मीदारों को आकर्षित एवं चयनित करना है। कुछ विद्वान संगठन में रिक्त पदों को भरने की प्रक्रिया को भर्ती मानते है। **किंग्सले** के शब्दों में, ''भर्ती वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोक सेवाओं में नियुक्ति के लिए उपयुक्त प्रत्याशियों को प्रतियोगिता के लिए प्रवृत्त किया जाता है। इस तरह यह एक व्यापक प्रक्रिया का अभिन्न अंग है जिसमें परीक्षा एवं प्रमाणीकरण की प्रक्रियाएँ भी सम्मिलित हैं।''

वर्तमान में भर्ती का आधार योग्यता है। अतः भर्ती, योग्य उम्मीदवारों को आकर्षित करने से संबंधित हैं। (उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशकों तक योग्यता प्रणाली प्रचलित होने से पूर्व ब्रिटेन में संरक्षण प्रणाली, अमेरिका में लूट प्रणाली, फ्रांस में अफसरों की नीलामी तथा बिक्री प्रथा प्रचलित थी।) भर्ती से संबंधित दो अवधारणाएँ प्रचलित हैं –

1. **नकारात्मक अवधारणा** – इससे तात्पर्य है अयोग्य उम्मीदवारों को संगठन से बाहर रखना, लोक सेवा में भर्ती प्रक्रिया के दौरान उम्मीदवारों के नकारात्मक पक्षों को जानकर उन्हे संगठन सेवा में सम्मिलित नहीं करना। यहां नकारात्मक पक्ष एवं उम्मीदवारों के अवगुणों से अभिप्राय है –

- राजनीति प्रभाव की समाप्ति,
- पक्षपातवाद की रोकथाम,
- धूर्त, स्वार्थी को बाहर रखना आदि।

2. **सकारात्मक अवधारणा** – इससे अभिप्राय है संगठन के रिक्त पदों को सबसे योग्य, क्षमतावान, नैतिक–चारित्रिक गुणों से युक्त व्यक्तियों से भरना। इस अवधारणा को क्रियान्वित करने के लिए बेहद सतर्क रहना पड़ता है एवं योग्यता एवं गुणों का निर्धारण वैज्ञानिक पद्धति तथा परीक्षणों से किया जाता है। इस प्रकार की भर्ती से संगठन की कार्यकुशता बढ़ती है। आधुनिक लोक सेवाओं में भर्ती की सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही प्रकार की अवधारणाएँ प्रचलित हैं क्योंकि दोनों का उद्देश्य योग्यता आधारित भर्ती ही है।

भारत में लोक सेवकों की भर्ती

भारत में लोक सेवकों की भर्ती के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. देश में लोक सेवकों की भर्ती के विभिन्न प्रकार प्रचलित हैं;

- **बाहरी या प्रत्यक्ष भर्ती (Direct Recruitment)** – इसमें निश्चित प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा योग्यता सूची के आधार पर चयन किया जाता है। उदाहरण– म.प्र. व्यापम द्वारा पुलिस विभाग के लिए उप–निरीक्षक (S.I.) की भर्ती, म.प्र. लोक सेवा आयोग द्वारा विभिन्न विभागों में विभिन्न पदों की भर्ती जैसे – डिप्टी कलेक्टर, उपपुलिस अधीक्षक (DSP), नायब तहसीलदार, महिला एवं बाल विकास अधिकारी, आबकारी अधिकारी, संघ लोक सेवा आयोग द्वारा विभिन्न विभागों में विभिन्न पदों की भर्ती जैसे– IAS, IPS, IRS, IAAS, IES आदि।

- **भीतरी या अप्रत्यक्ष भर्ती (Indirect Recruitment)** – इसमें किसी संगठन या विभाग में रिक्त उच्च पदों को उसी विभाग में निम्न पद पर कार्यरत् व्यक्तियों द्वारा निश्चित नियमानुसार पदोन्नत कर भरा जाता है। उदाहरण– राजस्व विभाग में तहसीलदार (नायब तहसीलदार से पदोन्नत), पुलिस विभाग में प्रधान आरक्षक (आरक्षक पद से पदोन्नत), इन्सपेक्टर/निरीक्षक (उप निरीक्षक से पदोन्नत) आदि।

- **प्रतिनियुक्ति से भर्ती (Recruitment on Deputation)** – इसमें पहले से ही सेवारत कर्मचारी या अधिकारी को उसी विभाग या अन्य विभाग में एक निश्चित अवधि तक अन्य पद पर नियुक्त किया जाता है।

- **स्थायी भर्ती** – इसमें किसी पद पर व्यक्ति की नियुक्ति उसकी सेवानिवृत्ति की आयु होने तक की अवधि के लिए की जाती है।

- **अस्थायी भर्ती** – इसमें किसी पद पर व्यक्ति की नियुक्ति कुछ निश्चित माह या वर्ष के लिए होती है। जैसे – संविदा, अतिथि, तदर्थ (Adhoc) नियुक्तियाँ आदि।

2. लोक सेवाओं के कुछ पदों पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से नियुक्ति की जाती है। जैसे– अखिल भारतीय सेवा के IAS, IPS के पद एवं राज्य सेवा के डिप्टी कलेक्टर, उप पुलिस अधीक्षक, पुलिस अधीक्षक के पद आदि।

3. लोक सेवा परिक्षार्थियों के मनोवैज्ञानिक परीक्षण अर्थात् उम्मीदवार की मानसिक परिपक्वता या बुद्धि स्तर के महत्व को समझते हुए लोक सेवकों की भर्ती में प्रवृत्ति परीक्षण (Aptitude Test) को संघ लोक सेवा आयोग द्वारा हाल ही में वर्ष 2011 से अपनाया गया है तथा राज्य सेवा आयोग द्वारा भी अपनाया जा रहा है।

4. भर्ती परीक्षा में सफल होने पर नियुक्ति–पत्र (ज्वाइनिंग लेटर) प्राप्त करते ही चयनित व्यक्ति का पदस्थापन माना जाता है और निश्चित अवधि तक परिवीक्षा (Probation) पर नियुक्ति प्राप्त की जाती है।
5. लोक सेवकों को परिवीक्षाधीन अवधि में नियमानुसार प्रशिक्षण हेतु भेजा जाता है। भारत में लोक सेवकों के प्रमुख प्रशिक्षण संस्थान हैं– लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी (उत्तरांचल), भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली, सरदार वल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद, म. प्र. राज्य प्रशासन अकादमी, भोपाल आदि।

प्रशिक्षण

किसी भी कार्य को उत्तम तरीके से करने के लिए उस कार्य से सम्बन्धित ज्ञान एवं कौशल की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षण वह क्रिया है जिसके द्वारा किसी विशिष्ट कार्य के सम्बन्ध में ज्ञान एवं चातुर्य में अभिवृद्धि की जाती है। सरल शब्दों में प्रशिक्षण किसी कार्मिक को विशिष्ट कार्य करने के योग्य बनाने की व्यवहारिक सीख है। प्रशिक्षण से कार्मिकों में अपने कार्यों के प्रति समझ में अधिक स्पष्टता, अधिक रूचि एवं कार्य–उत्पादकता बढ़ती है।

शब्द कोष में प्रशिक्षण को 'एक विशेष कला, व्यवसाय तथा उद्योग में निर्देश तथा अनुशासन' के रूप में परिभाषित किया गया है। भारत के प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन में प्रशिक्षण को 'मानवीय साधनों में निवेश तथा मानवीय क्षमता निर्माण के रूप में उल्लेखित किया है।

लोक सेवा में कर्मचारी प्रशिक्षण समिति (अमेरिका) के अनुसार "प्रशिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जो मुख्य रूप से लोक सेवक में वर्तमान तथा भावी कार्य को सम्पन्न करने के लिए गतिशीलता देती है। वह उपयुक्त स्वभाव, विचार–क्रिया, ज्ञान और दृष्टिकोण का उसी के अनुरूप विकास करती है।"

चूँकि प्रशिक्षण किसी कार्य को दक्षता से करने की कला सिखाता है अतः इसका क्षेत्र सीमित तथा विशेषीकृत होता है। इसकी प्रमुख **विशेषताएँ** इस प्रकार हैं–

1. प्रशिक्षण का स्वरूप प्रशिक्षणार्थियों की आवश्यकताओं के अनुसार निश्चित किया जाता है। प्रशिक्षणार्थी के पद दायित्वों के अनुसार निश्चित कार्य–कौशल पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है, जैसे–
    - उच्च स्तरीय प्रबन्धकों, प्रशासकों में अवधारणात्मक कौशल।
    - मध्य स्तरीय प्रबन्धकों, प्रशासकों में मानवीय कौशल।

- निम्न स्तरीय प्रबन्धकों, प्रशासकों में तकनीकी कौशल।

2. प्रशिक्षण संगठन के उद्दश्यों, कार्य–प्रकृति के अलावा देश, काल, संस्कृति तथा विज्ञान–तकनीक से प्रभावित होता है।
3. प्रशिक्षण में अनेक प्रकार की विधियों या पद्धतियों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता है। प्रशिक्षण एक तकनीकी प्रक्रिया के रूप में विकसित हो चुकी है जिसके अनेक प्रकार होते हैं।
4. प्रशिक्षण के प्रमुख प्रकार हैं– औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रशिक्षण, अल्पकालीन एवं दीर्घ कालीन प्रशिक्षण, व्यक्तिगत, सामूहिक एवं विशाल समूह प्रशिक्षण, शारीरिक, मानसिक तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण, विभागीय और केन्द्रीय प्रशिक्षण आदि।
5. प्रशिक्षण की कुछ प्रमुख पद्धतियाँ हैं– पत्राचार द्वारा निर्देशन, कक्षा–व्याख्यान द्वारा प्रशिक्षण, यांत्रिक प्रशिक्षण, कार्य पर प्रशिक्षण, प्रबन्धकीय तकनीकों द्वारा प्रशिक्षण (जैसे–वैयक्तिक अध्ययन, समस्या समाधान, समूह वार्ता, प्रस्तुतिकरण आदि), श्रव्य–दृश्य साधनों द्वारा प्रशिक्षण, सिण्डीकेट पद्धति आदि।
6. प्रशिक्षण की गुणवत्ता कार्मिकों और संगठन के अलावा सामाजिक–आर्थिक विकास को भी प्रभावित करती है।
7. प्रशिक्षण प्रदान करने वाले प्रशिक्षकों का ज्ञान, कार्य–अनुभव, उच्च स्तर का होना चाहिए उनमें प्रशिक्षण प्रदान करने में रूचि होना चाहिए तथा प्रशिक्षण–तकनीकों पर स्वयं भी प्रशिक्षण प्राप्त किया होना चाहिए।
8. प्रशिक्षण मानव संसाधन में पूँजी निवेश है, सीखने की आधारभूत क्रिया है तथा सतत् चलने वाला कार्य है।
9. प्रशिक्षण कार्मिकों में चिन्तन शैली, अभिरूचि एवं व्यवहार में परिवर्तन ला सकने योग्य होना चाहिए तभी यह सफल अन्यथा यह मात्र औपचारिकता बन कर रह जाता है।
10. प्रशिक्षण के उद्देश्य–निर्धारण, नियोजन एवं संचालन में अनेक तरह की समस्याएँ सामने आती हैं। उदाहरण–

- प्रशिक्षण की विषय–वस्तु एवं पाठ्यक्रम तैयार करना कठिन कार्य है। विषय की व्यापकता, गहराई निश्चित करना एक महत्वपूर्ण पक्ष होता है जिस पर प्रशिक्षण संस्था में एकमतता होना आवश्यक है।
- प्रशिक्षक कौन हो; विषय विशेषज्ञ हो, विभागीय अधिकारी हो, शिक्षा जगत से जुड़ा व्यक्ति हो, तथा निजी संस्थानों की सेवाएँ ली जायें या नहीं आदि प्रश्नों पर सैद्धान्तिक विवेचन के

साथ–साथ उसके व्यावहारिक पक्ष का ध्यान रखना होता है जो कि विवाद मुक्त एवं एकमत होना चाहिए।

- प्रशिक्षण की उच्च गुणवत्ता को बनाए रखने में धन की अपर्याप्तता एक बड़ी बाधा होती है।
- एक महत्वपूर्ण समस्या प्रशिक्षण के सम्बन्ध में सामान्यतः देखने में आती है वह है प्रशिक्षार्थी का प्रशिक्षण के प्रति गम्भीर नहीं होना और मात्र औपचारिकता मानना। आदि।

प्रशिक्षण औद्योगिक विकास, संगठनात्मक विकास तथा कार्मिक–विकास का महत्वपूर्ण माध्यम है।

पदोन्नति (Promotion)

पदोन्नति (Promotion) अर्थात् 'पद की उन्नति' किसी भी संगठन में कार्यरत् कार्मिकों की कार्यकुशलता, कार्य–संतुष्टि तथा मनोबल के स्तर को बनाए रखने का महत्वपूर्ण माध्यम है। साथ ही पदोन्नति संगठन में आन्तरिक भर्ती या अप्रत्यक्ष भर्ती है जिससे संगठन में रिक्त पड़े पदों को उसी संगठन में कार्यरत् अनुभवी कार्मिकों द्वारा भरा जाता है। इस प्रकार पदोन्नति को दो परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है –

- कार्मिकों की दृष्टि से यह उनके पद, स्तर, वेतन, अधिकार तथा सम्मान में वृद्धि है।
- संगठन की दृष्टि में यह संगठन में निम्न पद से उच्च पद पर अनुभवी कार्मिक की भर्ती करना है।

एल.डी.व्हाईट के अनुसार, ''पदोन्नति का अर्थ एक पद से किसी दूसरे ऐसे पद पर नियुक्ति से है जो उच्चतर श्रेणी का है तथा जिसमें बड़े उत्तरदायित्व तथा कार्यों की कठिन प्रकृति होती है और पदोन्नति के साथ ही पदनाम परिवर्तन एवं वेतन वृद्धि हो जाती है।''

पदोन्नति की प्रमुख विशेषताएँ एवं लक्षण इस प्रकार हैं ; या पदोन्नति में सम्मिलित है –

1. पद–परिवर्तन :– कार्मिक का निचले पद से उच्च पद को प्राप्त करना।
2. कार्यभार–परिवर्तन :– कम कठिन प्रकार के कार्यों से अधिक कठिन प्रकार के कार्यों को करना।
3. अधिकार एवं उत्तरदायित्व–परिवर्तन :– कम कार्य–अधिकार एवं उत्तरदायित्व से अधिक कार्य–अधिकार एवं उत्तरदायित्व को प्राप्त करना।
4. पदवी में परिवर्तन :– निचले पदनाम से ऊँचे पदनाम को प्राप्त करना।

5. वेतन–परिवर्तन :– कम वेतनमान से अधिक वेतनमान को प्राप्त करना।

पदोन्नति संगठन में कार्मिकों की प्रतिष्ठा तथा सम्मान की सूचक है तथा अच्छे कार्य के पुरस्कार स्वरूप है। पदोन्नति का विपरीत पदावनति (Demotion) होता है जिसका अर्थ है किसी कार्मिक को उच्चतर पद से निम्न पद पर भेजना जो कि वास्तव में यह कार्मिकों को लोक सेवा आचरण नियमों का उल्लंघन करने पर दण्डस्वरूप दिया जाता है।

सामान्यतः पदोन्नति तीन प्रकार की होती है –

1. **वेतनमान पदोन्नति** ; जब एक ही सेवा या संवर्ग के अधिकारी वर्तमान स्थिति से उच्च स्थिति की ओर पदोन्नत होते है।
2. **वर्ग या संवर्ग परिवर्तन पदोन्नति** ; जब निचले वर्ग से उच्चतर वर्ग में पदोन्नति होती है।
3. **सेवा परिवर्तन पदोन्नति** ;जब कार्मिक निचले स्तर की सेवा से पदोन्नत होकर वरिष्ठ या उच्च सेवा में आता है।

पदोन्नति के तीन **सिद्धान्त** प्रचलन में हैं –

1. **वरिष्ठता का सिद्धान्त (Principle of Seniority)–** वरिष्ठता का अर्थ है कार्मिक की संगठन में सेवा अवधि। इसके अनुसार उस कार्मिक को पहले पदोन्नति मिलेगी जिसकी सेवा अवधि दूसरों की तुलना में अधिक होगी। इसमें कार्मिक की आयु को आधार नहीं माना जाता है।

2. **योग्यता का सिद्धान्त (Principle of Merit)** – पदोन्नति का यह सिद्धान्त वरिष्ठता के सिद्धान्त के दोषों को दूर करने के लिए लोकप्रिय हुआ तथा कई सुधार आयोगों, विद्वानों एवं सलाहकार समितियों द्वारा पदोन्नति में योग्यता के आधार का सुझाव दिया हैं।

3. **वरिष्ठता–कम–योग्यता का सिद्धान्त (Principle of Seniority-Cum-Merit) –** इस सिद्धान्त के अनुसार संगठन में पदोन्नति कार्मिक की सेवा अवधि तथा उसकी योग्यता एवं उपलब्धियों दोनों के आधार पर होनी चाहिए।

जिस प्रकार भर्ती संगठन में कार्मिकों की गुणवत्ता को निर्धारित करती है, उसी प्रकार पदोन्नति भी संगठन का अभिन्न भाग बन चुके कार्मिकों की गुणवत्ता संवर्द्धन, मनोबल–निर्माण एवं कार्य–दृष्टिकोण को प्रत्यक्ष प्रभावित करती है। पदोन्नति की उपादेयता एवं महत्व को निम्नांकित बिन्दुओं से समझा जा सकता है–

1. इसकी नियमितता संगठन को जीवंतता प्रदान करती है।
2. यह अनुभवी कार्मिकों को संगठन में बनाए रखती है।
3. मनुष्य स्वभावतः महत्वाकांक्षी तथा उन्नति–अभिलाषी होता है। पदोन्नति से कार्मिकों में विकास को दिशा एवं अवसर मिलता हैं।
4. निष्पक्ष, नियमित एवं सुगम पदोन्नति श्रृंखला योग्य कार्मिकों को निम्न पदों पर भर्ती हेतु आकर्षित करती हैं।
5. पदोन्नति अप्रत्यक्ष रूप से संगठन एवं कार्मिकों में अपनत्व का रिश्ता बनाने में सहायक है।
6. वेतन–वृद्धि, सम्मान –वृद्धि एवं नवीन उत्तरदायित्व से कार्मिकों में श्रेष्ठ प्रदर्शन की इच्छा पैदा होती है जो सर्वदा संगठन के ही हित में है।
7. पदोन्नति के अवसर संगठन की प्रतिष्ठा एवं आकर्षण को बढ़ाते हैं।

किसी भी संगठन में पदोन्नति एक महत्वपूर्ण व्यवस्था एवं संवेदनशील मुद्दा होता है जो संगठनात्मक कार्यों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। संगठन में पदोन्नति की अनिवार्यता सेवा–शर्तो में बहुत महत्वपूर्ण है।

कार्मिक संगठन एवं संघ

भारत का संविधान नगरिकों को संगठित होने, संघ बनाने का अधिकार देता है। प्रत्येक संगठन के कार्मिक भी संगठित होकर अपना कार्मिक संगठन एवं संघ बना सकते हैं, तथा बनाते भी हैं, जिससे की वे अपनी समस्यागत माँगों तथा भावनाओं को संगठित रूप से सरकार के समक्ष रख सकें। सामान्यतः कार्मिक संघों/संगठनों के गठन के कार्य–उद्देश्य निम्नलिखित होते हैं –

1. कार्य–निष्पादन के समय आने वाली प्रक्रियागत, सुविधागत या अन्य समस्याओं के निराकरण की माँग सामूहिक रूप से करना। सामूहिक माँग का सरकार पर अधिक दबाव पड़ता है।
2. सरकार के किसी नीतिगत विषय पर अपनी सहमति प्रदर्शित करना या यदि आपत्ति हो तो विरोध एवं असहयोग की भावना प्रदर्शित करना।
3. कार्मिकों में आपस में एकता, विश्वास एवं सहयोग की भावना बनाए रखना।
4. कार्य–सुधार एवं कार्मिकों में कार्य–संतुष्टि के प्रयास करना तथा उनके किसी भी तरह के शोषण के विरूद्ध आवाज उठाना।
5. कार्मिकों के बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास हेतु विविध गतिविधियाँ संचालित करना।

6. विपरीत, अनपेक्षित या आपातकालीन परिस्थितियों में कार्मिकों का मनोबल बढ़ाना।
7. समाज के अन्य राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक या सास्कृतिक समूहों से अपने पक्ष या हित में सहयोग की भावना तैयार करवाना अर्थात् लोकमत को संघ के पक्ष में तैयार करवाना।
8. कर्मचारियों को उनके विचार एवं अनुभव व्यक्त करने, समस्याएँ बताने के लिए एक सार्वजनिक मंच प्रदान करना। आदि।

स्टॉल के अनुसार, '' कभी–कभी कर्मचारी किसी संघ में इसलिए सम्मिलित होते हैं कि वे अनुभव करते हैं कि प्रबन्धकों की मानमानी या कठोर कार्यवाही से उनकी रक्षा के लिए इस तरह का संगठन (संघ) आवश्यक है।''

वाल्टर शार्न के शब्दों में, '' प्रत्येक स्तर पर लोक सेवक यह अनुभव करते हैं कि उनके भौतिक स्तर की उन्नति के लिए प्रारम्भिक शक्ति के रूप में संगठित कार्मिक संघ होने चाहिए।

कार्मिक संगठन : प्रकार

संगठन प्रकृति, कार्य–तरीकों के आधार पर कार्मिक संघों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है–

1. **व्यावसायिक संगठन** (Professional Association) – यह किसी व्यवसाय या सेवा विशेष से सम्बद्ध कार्मिकों का संगठन होता है, जिनका कार्य विशिष्ट तथा तकनीकी प्रकृति का होता है। उदाहरण – चिकित्सकों का 'इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन', नर्सों का 'ट्रेण्ड नर्सेज़ एसोसिएशन ऑफ इण्डिया', शिक्षकों का 'ऑल इण्डिया साइन्स टीचर्स एसोसिएशन', प्रशासनिक अधिकारियों की 'भारतीय प्रशासनिक सेवा परिषद्' आदि। इस तरह के संगठन, उच्च स्तरीय कार्मिकों के होते हैं जिनका मुख्य उद्देश्य अपनी श्रेणी के कार्मिकों का बौद्धिक, शैक्षणिक तथा व्यावसायिक विकास करना होता है। इस तरह के संघ गैर–राजनीतिक होते हैं अर्थात् राजनीतिक गतिविधियों में संलग्न नहीं होते हैं तथा स्वतन्त्र प्रकृति के होते हैं। अपनी माँग या समस्या–समाधान हेतु ज्ञापन एवं वार्ता पर अधिक महत्व देते हैं। इन संघों का पंजीकरण 'सोसायटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1860' के अन्तर्गत होता है तथा इनके नाम के अन्त में प्रायः 'एसोसिएशन' शब्द आता है। इनकी सदस्य संख्या प्रायः सीमित होती है। यह अनुसंधान कार्य, आचार संहिता निर्माण तथा कार्यकुशलता वृद्धि पर व्यापक ध्यान देते हैं।
2. **मजदूर संघ** (Trade Union) – अधिकांश मामलों में इस प्रकार के संघ, किसी संगठन के कनिष्ठ या निम्नस्तरीय कार्मिक पदों से सम्बन्धित होते हैं। उदाहरण – 'आल इण्डिया पोस्ट एण्ड

रेलवे मेल सर्विस यूनियन', 'इण्डियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस', 'हिन्दू मजदूर सभा', 'भारतीय मजदूर संघ' आदि।

इस तरह के संगठनों का मुख्य उद्देश्य कार्य–सुविधाओं, भर्ती, पदोन्नति, वर्गीकरण–व्यवस्था, वेतन–भत्तों आदि भौतिक एवं आर्थिक सुविधाओं का विकास करवाना होता है। सामान्य कर्मचारी तथा श्रमिक वर्ग से सम्बन्धित इन संघों में राजनीतिक प्रभाव एवं राजनीतिक गतिविधियों में संलग्नता स्पष्ट दिखाई देती है। यह सभा ,समारोह, धरना–प्रदर्शन, हड़ताल तथा व्यक्तिगत सम्पर्क से विचार विनिमय करते हैं। इनकी सदस्य संख्या विशाल होती है तथा एक संघ के अधीन कई विभागों की यूनियनें हो सकती हैं। इस तरह के संघों के अन्त में सामान्यतः 'यूनियन' शब्द आता है। इनका पंजीकरण ट्रेड यूनियन एक्ट, 1926 के अधीन होता है।

भारत में सभी कार्मिक संगठनों को 'संघ' के रूप में लिखा जाता है तथापि अंग्रेजी में इन 'संघों' के नाम के पीछे 'एसोसिएशन', 'फेडरेशन', 'कान्फ्रेस', 'कांग्रेस', 'यूनियन' एवं 'ऑर्गेनाइजेशन' आदि शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। यहाँ यह बात विशेष ध्यान रखने योग्य है कि किसी संघ का किसी 'एक्ट' के अन्तर्गत पंजीकृत होना तथा सरकार से मान्यता प्राप्त होना, दोनों अलग बातें हैं। लोक सेवकों हेतु यह आवश्यक है कि वे मान्यता प्राप्त संघों कि ही सदस्यता प्राप्त करें। किसी संघ को मान्यता प्रदान करने के संदर्भ में सरकार ने नियमावली घोषित की है जिसमें उल्लेखित प्रावधानों एवं माप दण्डों के पूरा होने पर ही सरकार किसी संघ को मान्यता प्रदान करती है। इस संदर्भ में सरकार की नियमावली के उदाहरण हैं–केन्द्रीय लोक सेवाएँ (संहिता) नियमावली 1955 (1964 संशोधित), केन्द्रीय लोक सेवाएँ (सेवा एसोसिएशन को मान्यता) नियमावली, 1959 (1993 संशोधित) रेलवे सेवा (आचरण) नियम, 1956 आदि। इस विषय पर भारत में दूसरे वेतन आयोग (जगन्नाथ दास, अध्यक्ष) की एक महत्वपूर्ण अनुशंसा भी है कि 'जिस संगठन को सरकारी मान्यता प्राप्त नहीं है, उसकी सदस्यता अनुशासनात्मक नही मानी जाए तथा मान्यता देने के नियमों को उदारतापूर्वक बनाया जाए'।

वास्तव में, कार्मिक का किसी संघ के अन्तर्गत संगठित होना उसका 'संगठन का अधिकार' है जिसका मूल भारत के संविधान का अनुच्छेद 19 है जो देश के सभी नागरिकों को 'भाषण, अभिव्यक्ति, सभा और संगठन का अधिकार' प्रदान करता है। परन्तु, संविधान राज्य को यह अधिकार भी देता है कि 'राष्ट्रीय हित में वह इन अधिकारों पर उचित प्रतिबन्ध' लगा सकता है।

लोक सेवा : भूमिका एवं महत्व

लोक सेवा (Civil Service) आधुनिक शासन–व्यवस्था का आधार एवं एक अविभाज्य अंग है। राज्य, लोक सेवाओं की सहायता से ही अपने कर्तव्यों एंव उत्तरदायित्वों को पूर्ण करता है, या निष्पादित करता है। सामान्य बोल–चाल की भाषा में लोक सेवा को 'नौकरशाही' कहा जाता है, किन्तु प्रशासनिक शब्दावली (तकनीकी रूप से) अनुसार, लोक सेवा एक विशाल तंत्र या व्यवस्था है तथा लोक कार्मिक या नौकरशाह (Civil Servants or Bureaucrats) इस तंत्र या व्यवस्था के सदस्य होते हैं। लोक कार्मिकों या लोक सेवकों के कार्य व्यवहार के नकारात्मक पक्ष या दोषों के लिए भी 'नौकरशाही' शब्द का उपयोग किया जाता है जो वस्तुतः सही नहीं है। **पॉल एच.एपलबी** के शब्दों में, ''नौकरशाही तकनीकी दृष्टि से कुशल कर्मचारियों का एक व्यावसायिक वर्ग है जिसका संगठन पदसोपान के अनुसार किया जाता है और जो निष्पक्ष होकर राज्य का कार्य करते हैं।''

शासन किसी भी प्रकार का हो (अध्यक्षात्मक या मंत्रिपरिषद् – प्रधानमंत्री शासन, संसदीय या राजतंत्रात्मक, जनतांत्रिक या निरंकुश) सभी सरकारें कार्मिक–तंत्र पर निर्भर होती हैं। किन्तु, लोकतांत्रिक संसदीय शासन व्यवस्था में लोक सेवा एवं लोक सेवकों की भूमिका एवं महत्व, उनकी मात्रा (संख्या) एवं मूल्य सहित बढ़ जाता है। **हर्बर्ट मोरिसन** के अनुसार, 'नौकरशाही प्रजातंत्र का मूल्य' है। **मेक्स बेवर** के अनुसार, ' नौकरशाही आधुनिक राज्य का एक अपरिहार्य तत्व है।'

एस.के.लाल के शब्दों में, ''विधायिक तथा न्यायिक कार्यों की प्रकृति अस्थायी होती है लेकिन नौकरशाही सदैव अविरल रूप से कार्यरत् रहती है, क्योंकि इसका कार्यकाल स्थायी होता है। ये लोकनीति के विशिष्ट क्षेत्रों में विशेष तकनीकी योग्यता प्राप्त होते हैं तथा जनता से इनका सम्पर्क सदैव बना रहता है। अतः इनके पास ऐसी सूचनाएँ होती हैं जो लोक नीति के निर्माण और उसे लागू करने के लिए अत्यंत आवश्यक है।''

लोक सेवा एवं लोक सेवकों की भूमिका को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता हैं –

1. **संवैधानिक विकास के संदर्भ में** – प्रजातांत्रिक शासन में जन–प्रतिनिधियों द्वारा किसी विषय के गुण–दोषों पर तार्किक रूप से विचार किए बिना और राजनीतिक हित को प्राथमिकता देते

हुए निर्णय लेने की सम्भावना बनी रहती है। ऐसी स्थिति में लोक सेवक, जो कि अपनी शैक्षणिक एवं मानसिक योग्यता सिद्ध कर प्रतियोगी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर संविधान के अन्तर्गत शासन के सेवक बनते हैं, संवैधानिक मूल्यों, नियमों तथा प्रावधानों पर निष्पक्ष रूप से कार्य करते हैं। साथ ही, बदली हुई परिस्थितियों तथा आवश्यकतानुसार संविधान में संशोधन हेतु विधायिका को आँकड़े व सूचनाएँ उपलब्ध कराते हैं। इससे कार्यपालिका तथा जनता में देश के संविधान के जीवंतता, प्रासंगिकता तथा सक्रिय उपस्थिति बनी रहती है।

2. **लोक नीति के संदर्भ में** – आम जनता या सार्वजनिक जीवन एवं देश के आन्तरिक एवं विदेश सम्बन्धित विषयों पर बनी नीति लोक नीति होती है। 'नीति विज्ञान' लोकप्रशासन की एक महत्वपूर्ण, तकनीकी अध्ययन शाखा है तथा लोक सेवक लोक नीति के व्यापक क्षेत्र के प्रत्येक चरण एवं प्रत्येक स्तर पर उपस्थित रहते हैं –

. **नीति– निर्माण** ; विधायिका का कार्य क्षेत्र है जो वह कार्यपालिका को प्रत्यायोजित भी करती है और लोक सेवक नीति निर्माण में 'स्टाफ' की भूमिका भी निभाते हैं।

. **नीति– निष्पादन** ; कार्यपालिका का कार्य है। लोक सेवक कार्यपालिका का ही अंग होते हैं तथा सरकार के प्रत्येक निर्णय, नियम, आदेश–निर्देश तथा नीति–परिपालन में सक्रिय रूप से कार्यरत होते हैं। दूसरे शब्दों में, निष्पादन कार्य लोक सेवकों का ही उत्तरदायित्व है।

. **नीति– मूल्यांकन** ; विशेषज्ञ एवं तकनीकी प्रकृति का कार्य है जो नीति– निर्माण एवं नीति–निष्पादन की प्रक्रिया के अन्तर्गत भी किया जाता है तथा अलग से संस्थागत रूप में भी। लोक सेवकों के कार्य–अनुभव एवं उनकी बौद्धिकता शासन की मूल्यांकन–व्यवस्था का अभिन्न एवं महत्वपूर्ण भाग है।

3. **विकास के संदर्भ में** – विकास एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विकास के प्रयास अब लोक सेवा के नियमित एवं सामान्य कार्यों में सम्मिलित हो चुके हैं। तकनीकी रूप से, विकास के क्षेत्र को दो भागों में बाँटा जाता है – आम जनता के सर्वांगीण विकास एवं सशक्तिकरण के प्रयास, तथा विकास प्रशासन हेतु प्रशासनिक विकास। इस प्रकार, लोकसेवक आधुनिकीकरण (नवीन तकनीक, नवीन विचार) तथा परिवर्तन के अग्रवाहक होते हैं। लोक सेवकों के माध्यम से ही आधुनिकीकरण तथा विकास की योजनाओं को तैयार एवं कार्यान्वित किया जाता है।

4. **आर्थिक विकास एवं स्थायित्व के संदर्भ में** – लोकसेवक देश के आर्थिक उत्पादन, प्राकृतिक, भौतिक एवं मानव–संसाधन के उचित दोहन, तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में देश की आर्थिक सुरक्षा एवं स्थायित्व जैसे महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट लक्ष्यों के निर्धारण में सहायक होते हैं। उचित करारोपण

के बाद उन्हें वसुलना, राजस्व तथा वित्तीय–व्यवस्था के द्वारा बचत योजनाएँ चलाना, पूँजी का निर्माण, आयात–निर्यात व्यवस्थापन, राजकोष की सुरक्षा आदि सभी विश्वसनीय कार्य लोक सेवा के कार्य–क्षेत्र हैं।

5. उपरोक्त के अतिरिक्त, लोक सेवा – व्यवस्था ;

- राष्ट्रीय एकता, समभाव, समानता को स्थापित करने में सहायक है क्योंकि विभिन्न जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र एवं मत वाले व्यक्ति लोक सेवक बनते ही, प्राथमिक रूप से है लोक सेवा तंत्र का हिस्सा होते हैं।
- राजनीतिक एवं प्रशासनिक संचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- प्रदत्त विधायन, प्रशासनिक अधिनिर्णयन, नियम अधिनिर्णयन के प्रशासनिक रूप से तकनीकी कार्य तथा अर्द्ध–विधायी एवं अर्द्ध–न्यायिक कार्य सम्पन्न करते हैं। आदि।

लोक सेवा के कार्य–क्षेत्र को बाँधना असंभव है अपितु इसे कार्य नवीन आयामों में बढ़ते जा रहें हैं। **पीटर एम. बाल्वो** के शब्दों में, ''नौकरशाही प्रशासन को अधिक कुशल, विवेकशील, निष्पक्ष तथा संगत बनाती है। नौकरशाही के बिना प्रशासन जीवन शून्य हो जायेगा।''

===